स्वदर्शन और परदर्शन

मुकेश के मन में संसार से विरक्ति हुई। योगी बनने की तीव्र उत्कंठा जगी, प्लैन बने, परंतु सफलता उसके कदम न चूम सकी। वह भोला, समझ न पाया कि गलती कहां हो रही है। लंबा समय तो गपशप में बिता दिया, जब होश आया तो हिम्मत कम थी, जब हिम्मत बंधी तो सफलता न मिली। आखिर क्या रहस्य है? मुकेश की समझ में नहीं आया। जब दिव्य नेत्र मिला तो पता चला अपनी कमज़ोरी का कि उसके दिव्य नेत्र की दूर की नज़र तो तेज थी, परंतु समीप की नजर काफी मंद थी। अर्थात् उसे दूसरे तो स्पष्ट दिखाई देते थे, परंतु स्वयं का स्वरूप उसे स्पष्ट दिखाई नहीं देता था। दूसरों को देखने का संस्कार उसमें इतना प्रबल था, उसकी नजर इतनी पैनी थी कि वह शीघ्रता से दूसरों के अवगुण-दर्शन कर लिया करती थी। बस जब उसे सत्य-रहस्य का बोध हुआ तो उसने आँखें बन्द कर ली अर्थात् दूर की दृष्टि को बंद किया। उसने प्रतिज्ञा की कभी भी परदर्शन व परचिंतन न करने की। वह अन्तर्मुखी होकर लग गया स्वदर्शन में। बस उसकी स्व-उन्नति का मार्ग खुल गया। अब उसे अनुभव हुआ कि स्वदर्शन ही तो स्व-उन्नति की सीढ़ी है।

'योगी और स्व-चिंतन' दोनों का विच्छेद करना कठिन काम है। जो योगी स्व-चिंतक नहीं, वह न तो शुभचिंतक हो सकता और न श्रेष्ठ संकल्पों के अविनाशी खजाने से सम्पन्न। योगी भी यदि परदर्शन ही करता रहे तो उसे योगी कौन कहेगा? योगी भी यदि दुनियावी प्रपंच में संलग्न है, तो वह योगी नहीं। योगी को तो सिवाय एक के अन्य कुछ दिखाई ही नहीं देता और यदि देता है तो वह निशाने पर कदापि नहीं पहुंच पाएगा। अर्जुन का उदाहरण एक योगी का ही तो उदाहरण है कि उसे चिड़िया की आंख के सिवाय अन्य कुछ भी दिखाई नहीं देता था। एक योगी भी प्रकाशस्वरूप परमात्मा के अतिरिक्त अपने दिव्य नयन से अन्य किसी का भी दर्शन नहीं करता। यदि वह इस ताक में है कि दूसरे क्या कर रहे हैं, दूसरे मेरे बारे में क्या सोच रहे हैं या दूसरे अच्छा पुरूषार्थ नहीं कर रहे हैं, तो वह कभी एकाग्रचित्त नहीं हो सकता।

जैसे विद्यार्थीकाल में मेधावी विद्यार्थी कमजोर विद्यार्थियों को नहीं देखते; उसके साथ गपशप नहीं लगाते अथवा उन्हें दोस्त नहीं बनाते, वैसे ही साधनाकाल में सर्वोच्च लक्ष्य को पाने वाले को, फरिश्ता बनने के इच्छुक को, कभी भी परदर्शन में व्यस्त नहीं होना चाहिए।

जो सदा दूसरों को ही देख रहा है, वह स्वयं को देखना तो भूल ही जाता है। जो अपनी अंगुली दूसरों की ओर उठा रहा है, वह यह कभी नहीं देखता कि उसकी अंगुली के नाखून के नीचे कितना मैल है। दूसरों को देखते ही हमारा मन उनके प्रभाव के अधीन हो जाता है, हम उसके ही बारे में सोचते हैं कि देखो अमुक-अमुक व्यक्ति ऐसा-ऐसा कर रहा है। फलाना-फलाना महारथी ऐसे-ऐसे बोलता है, उसमें ये बुराइयां हैं, आदि। इस प्रकार दूसरों को सतत देखने की आदत हमारे दिव्य नेत्र में किचड़ा डाल देती है, फलस्वरूप दिव्य नेत्र बंद हो जाता है और दिव्यता लोप हो जाती है।

इसलिए सन्यास कर लें परदर्शन का। परदर्शन परेशानियों का जन्मदाता है। स्व-चिंतन करें कि क्या हम दूसरों को देखने के लिए ही भगवान् के पास आये हैं? क्या दूसरों को देखने से हमें कुछ मिलेगा? क्या इससे हमारा चिंतन विकृत नहीं होगा? क्या हम लक्ष्य से दूर नहीं रह जायेंगे? तो इस परदर्शन का त्याग करो तो उन्नति का पथ प्रशस्त हो।

ये परदर्शन मन में परचिंतन, परनिंदा वा घृणा जैसे सूक्ष्म रोगाणुओं को जन्म देता है और मनुष्य तेरे-मेरे के प्रपंच में फंस जाता है। और जहां तेरे-मेरे की व्याधि बढ़ी, योगी का योगयुक्त जीवन मंझधार में बहने लगता है। 'तेरा-मेरा' गृहस्थियों के संस्कार हैं, योगियों के नहीं। योगियों का तो समस्त संसार ही अपना होता है या फिर योगी तो वायदा कर चुके हैं कि प्रभु सब-कुछ तेरा...मेरा भी तेरा और मैं भी तेरा... फिर ये प्रपंच आया कहां से...?

तो दूसरों को न देखो कि वे पुरूषार्थ कर रहे हैं या नहीं। उन्हें देखकर ये भी न सोचो कि ये नामीग्रामी महारथी भी योगयुक्त नहीं है, कोई भी शायद पुरूषार्थ नहीं कर रहा... ऐसी बात नहीं। 108 रत्न तो स्वयं में मग्न हैं ही। आप उन्हें देखो। परंतु कई कमजोर साधक दूसरों को देखकर स्वयं भी पुरूषार्थहीन हो जाते है- यह उनकी महान् भूल है।

परदर्शन से परवर्णन या परनिंदा होती है और ऐसी आत्माएं जहां भी मिलेंगी, सिवाय तेरी-मेरी की, अन्य कोई भी उपयोगी चर्चा नहीं करेंगी। उसके लिए घंटों इन चर्चाओं में बिता देना तो सामान्य बात है। परंतु चर्चा समाप्ति पर यदि वे अपनी मनोस्थिति का अवलोकन करें तो वे पाएंगे कि उसमें खिन्नता व निराशा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। तो इस सूक्ष्म पाप की ओर कोई स्वयं को क्यों ले चले - जरा अपने कर्तव्य का तो स्मरण करो।

हमारा परमपिता रोज हमसे पूछता है, वत्सों - कहाँ मग्न हो? दूसरों को देखने में...? छोटी-छोटी बातों में अमूल्य समय नष्ट करने में...? तृष्णाओं के पीछे...? अपने ही संस्कार स्वभाव को मिटाने में...? या अपने महान् कर्त्तव्यों को पूर्ण करने में? तुम भूल तो नहीं गये अपने महान् कर्त्तव्यों को? भक्त तुम्हारा आह्वान कर रहे हैं... बाप स्वयं वतन में तुम्हारा इंतजार कर रहे हैं.... अशान्त आत्माएं तुमसे शान्ति की भीख मांग रही हैं...।

तुम्हें विश्व के सम्पूर्ण दूषित वायुमण्डल को शुद्ध करना है, तुम्हें सम्पूर्ण प्रकृति को पावन करना है...तुम्हें भटकती आत्माओं को मुक्ति देनी है... ग्रहों को अनुकूल बनाना है... नई सृष्टि की स्थापना में गई आत्माओं को सहयोग देना है... तुम्हें स्वयं भी पाप-मुक्त होकर फरिश्ता बनना है... तुम्हें भक्तों की मनोकामनाएं पूर्ण करनी है। इतनी जिम्मेदार आत्माएं छोटी-छोटी बातों में या हँसी-मजाक में घंटों व्यतीत करें, बच्चे, यह शोभा नहीं देता... उठो अपनी जिम्मेदारियों को पहचानो, दूसरों को देखना छोड़ो, अपने महान् कर्तव्यों को पूर्ण करो।

तो प्रत्येक साधक स्वयं से पूछे - ''परचिंतन में कितने घंटे प्रतिदिन नष्ट होते हैं? किसी के चार, किसी के छः तो किसी के उससे अधिक घंटे परचिंतन की भेंट चढ़ जाते हैं। परंतु कई पुरूषार्थियों को इसका कोई अहसास नहीं। यदि उनसे पूछा जाए कि क्या वे परचिंतन करते हैं, तो वे बड़े आत्मविश्वास से कहेंगे - कभी नहीं। परंतु सत्य यही है कि कोई भी इस सूक्ष्म बीमारी से पूर्णतया मुक्त नहीं है।

सचमुच परचिंतन पतन की जड़ है। कितने ही साधकों को हमने इसके कारण मार्ग से फिसलते देखा, कितने ही अब भी उल्टी दिशा में जा रहे हैं। इस परचिंतन ने कितनों के मन की दिशा को विकृत किया, यह प्रतिदिन कितनों की खुशी चुरा लेता है, कितनों को अशान्त व शक्तिहीन बनाता है। परचिंतन में उलझी आत्मा का मन कभी भी एकाग्र नहीं हो सकता। इसलिए आँखे बंद कर लो। कौन क्या कर रहा है - देखो ही नहीं। देखो केवल यह कि मैं क्या कर रहा हूं? करना है केवल एक का चिंतन। परचिंतन का जीवन में कोई स्थान ही न हो। एक पुरूषार्थी प्रयास के बाद भी योगयुक्त स्थिति बनाने में सफल नहीं हुआ। जब उसे परचिंतन का परहेज करने को कहा और उसने परचिंतन न करने की प्रतिज्ञा कर ली तो पन्द्रह दिनों में उसका ललाट दिव्य तेज से चमचमाने लगा।

परचिंतन से तो मन में गंदगी ही बढ़ती है, मन कमजोर बनता है। परंतु कई कमजोर बुद्धि वाले साधक दूसरों को देख-देखकर स्वयं भी हिम्मतहीन बन जाते हैं। उन्हें पता ही नहीं चलता कि वे आगे क्यों नहीं बढ़ रहे हैं? कौन सा कीड़ा उनकी जड़ों को खोखला कर रहा है? अब उन्हें जान लेना चाहिए कि उनका मार्ग अवरूद्ध कर रहे हैं, ये दो पत्थर की चट्टानें - परदर्शन और परचिंतन....।

तो आओ, स्वदर्शन के दिव्य पथ पर चलकर स्वदर्शन चक्रधारी बनें और माया का गला काट दें। क्या आपने कभी सोचा है कि श्रीकृष्ण व राम दोनों को ही विष्णु का अवतार माना गया है। परंतु श्रीकृष्ण के पास स्वदर्शन-चक्र था, श्रीराम के पास नहीं। वे सदा बाणों से ही रावण से युद्ध करते रहे। क्यों? रामावतार में विष्णु अपना स्वदर्शन -चक्र कहां छोड़ आये? ज्ञानवान आत्माएं जानती हैं कि जो स्वदर्शन चक्रधारी बने वे श्रीकृष्ण वंशी बने बाकी रामवंशी बने!

स्वयं को देखें कि मैं अहम्, ईर्ष्या, द्वेष या घृणा की अग्नि में तो नहीं जलता और सोचें कि इसमें जलने से मुझे कुछ मिलेगा या सब-कुछ नष्ट होगा? दूसरे आगे बढ़ रहे हैं या उनका नाम हो रहा है या उन्हें अच्छे अवसर मिल रहे हैं - यह देखकर स्वयं के अवसरों को व स्वयं के श्रेष्ठ भाग्य को भूल न जाओ। ये अहम् या ईर्ष्या तुम्हारे शत्रु हैं, इन्हें नष्ट कर दो। मेरा लक्ष्य क्या है? कुछ महान् लक्ष्य है भी या केवल मैंने भी सुना ही है कि हमारा लक्ष्य विष्णु-समान बनना है। यदि मेरा लक्ष्य महान् है तो मैं उसे पाने के लिए क्या कर रहा हूं? कई लोग पूछते हैं कि हम तो कुछ करना चाहते हैं, वो होता नहीं। परंतु पहले हम स्वयं से पूछें कि क्या सचमुच हम कुछ करना चाहते है, क्या हमारी 'इच्छा शक्ति' भी प्रबल है? यदि हाँ तो हमने उसे पूर्ण करने के लिए प्लान क्या बनाया है? कहीं ऐसा तो नहीं कि हम करना तो बहुत कुछ चाहते हैं, परंतु प्लानिंग हमारे पास कुछ भी न हो। क्योंकि श्रेष्ठ पुरूषार्थ के लिए हमें अपनी दिनचर्या में परिवर्तन लाना पड़ेगा, हमें कुछ कम महत्व के काम छोड़ने पड़ेंगे और अभ्यास बढ़ाना पड़ेगा। परंतु यदि कोई चाहे कि वह व्यापार में भी उतना ही समय दे, रात को सोये भी बारह बजे, अभ्यास के लिए भी समय न निकाले, अपनी व्यस्तता को कम न करे और योगी भी बनना चाहे - तो भला ये कैसे संभव होगा? केवल एक ही तो प्राप्ति होगी...!

आप गंभीरता से स्वयं का निरीक्षण करें कि मैं जो पुरूषार्थ कर सकता हूं. क्या वह कर रहा हूं? हम बहुत कुछ कर सकते हैं। कई जगह हमारा समय व शक्तियां अनावश्यक रूप से ही नष्ट हो जाती हैं। हम उसे बचाएं और जो कुछ करना संभव है वो कर लें। ताकि अंत में हमें यह सोच-सोचकर पश्चाताप न हो कि मैं कर तो सकता था परंतु मैंने किया नहीं।

हम स्वयं को देखें, ''मेरा लक्ष्य ईश्वरीय आनंद है या सांसारिक प्राप्तियां?'' भगवान को पाकर, उसके दिव्य कर्त्तव्यों को देखकर मैं संसार में अभी तक भी आसक्त हूँ या मेरा मोह भंग हो गया है? यदि मेरा लक्ष्य ईश्वरीय प्राप्तियां ही है तो मैं सांसारिकता को समेट लूं। जबकि हम देख रहे हैं कि सांसारिक रसों में डूबे लोग सृष्टि पर उदय हुये भगवान् को, ज्ञान-सूर्य को देख भी नहीं रहे हैं, तो मैं ईश्वरीय रसों का अभिलाषी, फिर भला संसार की ओर क्यों देखूं!

निरीक्षण करें, मैं कहां तक पहुंचा हूं, मेरी मंजिल बाकी कितनी दूर है? क्या मैं सचमुच ही वहां पहुंचना चाहता हूँ, या मेरा इरादा इतना प्रबल नहीं है? या जो कुछ मिला है, मैं उसी में संतुष्ट हूं? - **ब्र.कु.सूर्य**

पुरी। शंकराचार्य स्वामी निश्चलानंद सरस्वती महाराज को रक्षासूत्र बांधते हुए ब्र.कु.अनुपमा।

एल्लूरू। श्री श्री दत्ता विजयानंदा स्वामी, दत्ता पीठम् मैसूर को रक्षासूत्र बांधते हुए ब्र.कु.लावण्या।

जयपुर-सांगानेर। विधायक घनश्याम तिवाड़ी को रक्षासूत्र बांधते हुए ब्र.कु.पूजा।

हाथरस। जिला अधिकारी सूर्य प्रकाश गंगवार को रक्षासूत्र बांधते हुए ब्र.कु.शांता।

दिल्ली-लोधी रोड। एनडीएमए के सचिव डॉ.श्याम अग्रवाल को रक्षासूत्र बांधते हुए ब्र.कु.गीरिजा।

भिलाई। भिलाई इस्पात संयंत्र के सी.ई.ओ.एस.चन्द्रशेखर को रक्षासूत्र बांधते हुए ब्र.कु.माधुरी।

मानसा। डिप्यूटी कमिश्नर अमित ढाका को आत्म स्मृति का तिलक लगाते हुए ब्र.कु.सुदेश।